ISSN: 2456–4397 RNI No.UPBIL/2016/68067 Vol-5* Issue-6* September-2020
Anthology : The Research

शंकराचार्य तथा श्री अरविन्द के दर्शन में जगन्मिथ्यात्व सम्बन्धी अवधारणा का तुलनात्मक अध्ययन

Comparative Study of The Concept of Jaganism In The Philosophy of Shankaracharya and Sri Aurobindo

Paper Submission: 16/09/2020, Date of Acceptance: 25/09/2020, Date of Publication: 26/09/2020

पूनम सिंह
शोध छात्रा,
दर्शन शास्त्र विभाग,
इलाहाबाद विश्वविद्यालय,
प्रयागराज, उत्तर प्रदेश, भारत

सारांश

भारतीय दर्शन के अद्वैत वेदान्त के दार्शनिक शंकराचार्य के दर्शन का केन्द्रिय विषय ब्रह्म की सत्ता है। जीव, जगत, माया, मोक्ष ये सभी ब्रह्म की सत्ता से सम्बन्धित है। समकालीन पाश्चात्य दार्शनिक श्री अरविन्द के दर्शन का मुख्य धेय्य मानव का समग्र विकास है। शंकराचार्य तथा श्री अरविन्द जगत की सत्ता को तो मानते हैं किन्तु जगत के सम्बन्ध में इन दोनों दार्शनिकों के विचारों में समानता तथा असमानताएँ भी हैं।

अद्वैत वेदान्त में तीन प्रकार की सत्ता प्रतिभासिक, व्यवहारिक और पारमार्थिक सत्ता को माना गया है। जगत व्यवहारिक सत्ता के अन्तर्गत आता है। शंकराचार्य जगत को न तो पूर्णतः सत् न तो असत् मानते हैं बल्कि इसे अनिवर्चनीय सत्ता मानते हैं। जगत सत् तब तक प्रतीत होता है जब तक जीव की अविद्या का निराकरण नहीं हो जाता है। जीव को 'अहं ब्रह्मास्मि' का ज्ञान होने पर जगत की असत्यता का बोध हो जाता है। इसलिए जगत की सत्ता अनिवर्चनीय है।

श्री अरविन्द जो समग्र विकासवाद के पोषक है। जगत की सत्ता को सत् मानते हैं। सच्चिदानन्द ब्रह्म के समान यह जगत भी सत् है। श्री अरविन्द सृष्टि को अज्ञानता के क्षेत्र से उत्पन्न मानते हैं। सृष्टि के निर्माण क्रम में परम तत्व अपनी अभिव्यक्ति चेतना के विभिन्न स्तरों में करता है। ईश्वर जो कि निरपेक्ष है वह सापेक्ष अतिमानस के द्वारा जगत का निर्माण करता है।

इस शोध पत्र में हम शंकराचार्य तथा श्री अरविन्द के जगत मिथ्यात्व के निर्माण सम्बन्धी मतों को विस्तार से जानने का प्रयास करेंगे।

The central theme of the philosophy of Advaita Vedanta philosopher Shankaracharya of Indian philosophy is the power of Brahma. Jiva, Jagat, Maya, Moksha are all related to the power of Brahma. The main aim of the philosophy of contemporary Western philosopher Sri Aurobindo is the overall development of human beings. Shankaracharya and Sri Aurobindo believe the power of the world, but there are similarities and inequalities in the views of these two philosophers regarding the world.

In Advaita Vedanta, three types of power are considered to be transcendental, practical and transcendental. The world comes under practical authority. Shankaracharya considers the world as neither completely satta nor asaat, but considers it to be an unalienable power. Jagat Satta appears until the ignorance of the creature is resolved. The knowledge of 'ego Brahmasmi' becomes realizing the untruth of the world. Therefore the power of the world is indescribable.

Sri Aurobindo who is the foster of overall developmentalism. He considers the power of the world to be true. This world is also true like Sachchidananda Brahma. Sri Aurobindo considers the universe as originating from the field of ignorance. In the creation order of the universe, the ultimate element expresses itself in different levels of consciousness. God, who is absolute, creates the world through relative superhumanism.

In this research paper, we will try to know in detail the views related to the creation of Jagat Falsehood of Shankaracharya and Sri Aurobindo.

मुख्य शब्द : जगत, ब्रह्म, निरपेक्ष ब्रह्म, सच्चिदानन्द, अज्ञानता, अतिमानस, माया, लीला।
Jagat, Brahman, Absolute Brahman, Sachchidananda, Ignorance, Superman, Maya, Leela.

प्रस्तावना

अद्वैत वेदान्त में तीन प्रकार की सत्ता का माना गया है– प्रतिभासिक, व्यवहारिक और पारमार्थिक। जीवादि जगत की सत्ता व्यवहारिक जगत से सम्बन्धित है। शंकराचार्य ने जगत को सत् और असत् दोनों माना है। ब्रह्म ज्ञान साधन के दृष्टिकोण से जगत सत् है पारमार्थिक जगत का ज्ञान व्यवहारिक जगत के ज्ञान के पश्चात् ही प्राप्त किया जा सकता है। अद्वैत वेदान्त में व्यवहारिक जगत का निर्माण सगुण ब्रह्म अर्थात् ईश्वर द्वारा की गई है। सम्पूर्ण जगत का उपादान कारण तत्व ही ब्रह्म का तटस्थ लक्षण है।1 शारीरिक भाष्य के जन्माधिकरण में शंकराचार्य ने सगुण ब्रह्म को नाम रूप से अभिव्यक्त तथा अनेक कर्ताओं व भोक्ताओं से युक्त है। इस जगत की उत्पत्ति स्थिति और लय जिस सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान कारण होते हैं, वही ब्रह्म है।

पारमार्थिक जगत तात्विक रूप से सत् है। श्रुति में कहा गया है कि ''सर्व खलु इदं ब्रह्म'' लेकिन नानारूपात्मक जगत मिथ्या या असत् है क्योंकि यह अविद्याजनित है। शंकराचार्य जगत को उसी प्रकार सत् मानते हैं जिस प्रकार जागृतावस्था के पूर्व स्वप्नावस्था में समस्त व्यवहार जगत वास्तविक प्रतीत होते हैं। जगत के मिथ्यात्व का बोध ब्रह्म ज्ञान से होता है। जगत को मिथ्यात्व कहने का तात्पर्य यह नहीं है कि जगत प्रतिभाषिक सत्ता के समान असत् है।

पारमार्थिक दृष्टिकोण से हम भले ही जगत को असत् कहें किन्तु इससे जगत असत् नहीं कहलाएगा क्योंकि जीव को ब्रह्म ज्ञान की प्राप्ति व्यवहारिक जगत में रहकर ही प्राप्त होता है। ब्रह्म ज्ञान की प्राप्ति के पश्चात् भी इस जगत की सत्ता बनी रहती है। क्योंकि शंकराचार्य अनेक जीववाद का समर्थन करते हैं। एक जीव को ब्रह्म ज्ञान की प्राप्ति के पश्चात् अन्य जीवों को स्वतः मुक्ति मिल जाती। किन्तु मत अद्वैत वेदान्त के परिपेक्ष में कहना अनुचित है।

शंकराचार्य सांख्य दर्शन के प्रकृतिपरिणामवाद के सिद्धान्त का खडन ब्रह्मसूत्र भाष्य में करते हैं। शंकराचार्य के अनुसार जड़ प्रकृति से जगत का निर्माण सम्भव नहीं है। वह प्रकृति में रचना की प्रवृत्ति ही नहीं हो सकती।[1] प्रकृति अचेतन है और अचेतन स्वयं प्रकृति का निर्माण नहीं कर सकती है; अचेतन में सक्रियता तब उत्पन्न होती है जब कोई प्राणी उन क्रियाओं को प्रेरित करने के लिए होता है।[2] शंकराचार्य सांख्य दर्शन के कारणता सिद्धान्त का खण्डन करते हुए इस मत को अस्वीकार करते हुए कहते हैं कि परमाणुओं में स्वतः क्रिया होना असम्भव है। परमाणुओं में सक्रियता का आधार ईश्वर को मानना अनिवार्य है। इसी प्रकार योग दर्शन से ईश्वर को योग की विभिन्न अवस्थाओं का केन्द्र बिन्दु माना गया है। यहाँ ईश्वर को जगत का सृष्टिकर्ता नहीं माना गया है।

शंकराचार्य ईश्वर को जगत का निमित्त और उपादान दोनों कारण मानते हैं। किन्तु इस पर आक्षेप भी किया जाता है।

अद्वैत वेदान्त में जगत की सत्ता स्वतन्त्र एवं निरपेक्ष न होकर ब्रह्मासित है। ब्रह्म जगत का अभिन्न निमित्तोपदान कारण है। ब्रह्म अधिष्ठान है और जगत उसका आभास है। माया अपनी आवरण शक्ति से ब्रह्म की निरपेक्ष सत्ता पर आवरण डालकर उसे विक्षेपित करती है। जिसके परिणामस्वरूप यह नाना प्रपंचात्मक जगत सत्य प्रतीत होता है।

शंकराचार्य जगत की मिथ्यात्व को सिद्ध करने के लिए कई सिद्धान्तों का सहारा लेते हैं–

'सामान्यतोदृष्ट अनुमान के आधार पर जगत के मिथ्यात्व को प्रमाणित करते हुए कहते हैं कि जिस प्रकार शुक्ति–रजत विषय रूप में है उसी प्रकार जगत भी विषय रूप है और बाह्य जगत की प्रतीति मिथ्या है।

अभासवाद सिद्धान्त के अनुसार केवल पारमार्थिक ब्रह्म की सत्ता ही सत् है। माया या अविद्या के कारण निरपेक्ष ब्रह्म की सत्ता मिथ्या जगत के रूप में प्रतीत होती है। अर्थात् जगत स्वरूप से ही ब्रह्म में अध्यस्त है। ब्रह्म का जगत रूप में अध्यस्त होने पर भी ब्रह्म की पारमार्थिक सत्ता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

विर्वतवाद के द्वारा जगत के मिथ्यात्वत को सिद्ध करते हुए कहते हैं कि ब्रह्म का जगत के रूप में परिणाम वास्तविक न होकर आभास मात्र है। शंकराचार्य के विर्वतवाद तथा नैयायिकों के असत्य कार्यवाद में समानता है। असत्य कार्यवाद के अनुसार उत्पत्ति वास्तविक नहीं होती है। केवल उत्पत्ति का आभास होता है।

शंकराचार्य जगत को ब्रह्म का विर्वत मानते हैं किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि जगत ब्रह्म की अन्यथा प्रतीति है जो माया या अज्ञान जनित है। शंकराचार्य जगत के मिथ्यात्व को भले ही तर्कों के द्वारा सिद्ध करने का प्रयास करते हैं किन्तु उन्होंने जगत की व्यवहारिक सत्ता के अस्तित्व को भी माना है। जब तक जीव को अपने वास्तविक स्वरूप का ज्ञान न हो तब तक जीव के लिए यह व्यवहारिक जगत सत् है। व्यवहारिक दृष्टि से जगत को सत्य कहने में शंकर को कोई संकोच नहीं है।[3] पारमार्थिक दृष्टि जगत उसी प्रकार असत्य है जैसे स्वप्न, रज्जु, भ्रम आदि।[4]

व्यवहारिक स्तर पर जगत भले ही सत्य प्रतीत होता हो किन्तु इसकी प्रतीति आभास मात्र है। नानारूपात्मक विषय सत्ता के रूप में तो सत्य है किन्तु प्रतीयमान रूप में असत् है। जगत ब्रह्म का प्रतिभाषिक रूप है। यह ब्रह्म के समान सदैव सत् प्रतीत नहीं हो सकती।

शंकराचार्य का मत है कि जो सत् है वह सर्वथा सत्य है और जो असत् है वह सदैव असत् ही रहेगा किन्तु जगत को सत् और असत् की कोटि में नहीं रखा जा सकता क्योंकि शंकराचार्य ने इसे अनिवर्चनीय कहा है। जगत की व्यवहारिकता सदैव बनी रहती है। यह जीवात्मा के ज्ञान और दृष्टिकोण के अनुसार व्यवहारिक और पारमार्थिक प्रतीत होता है। जगत ब्रह्म का विर्वत है।

विद्यारण्य ने पंचदसी में जगत और ब्रह्म के सम्बन्ध को स्पष्ट करते हुए यह कहा है कि जगत कार्य रूप में कारण रूप में ब्रह्म में पूर्व निहित होता है। इसे स्पष्ट करने के लिए मिट्टी और कुम्हार के सम्बन्ध द्वारा बताया कि कार्य की उत्पत्ति से पहले मिट्टी में स्थिति छिपी हुई शक्ति कुम्हार आदि की सहायता से विकारस्वरूप वाली हो जाती है। शंकराचार्य जगत की सत्ता को ब्रह्म के समान सत्य मानते हैं। ब्रह्म जगत का कारण रूप है तथा जगत ब्रह्म की कार्य रूप में परिणति है। जैसे कारणरूपी ब्रह्म की सत्ता त्रिकाल की सीमा से परे है, उसी प्रकार सत्तारूपेण जगत भी त्रिकाल में तत्व नहीं खोती। क्योंकि कारण कार्य अभिन्न है।[5]

ब्रह्म और जगत में सम्बन्ध

ईश्वर ब्रह्मरूप की परिणति है। ईश्वर कारण रूप में इस जगत का निमित्त कारण है। ईश्वर मायोपहित उपाधि के द्वारा इस जगत का निर्माण करता है। माया ब्रह्माश्रित है। माया की अभिव्यक्ति ब्रह्म द्वारा सम्भव होती है। सांख्य दर्शन जगत के निर्माण के सिद्धान्त में प्रकृति पुरुष के सिद्धान्त को मानता है। सांख्य दर्शन के अनुसार सृष्टि का उपादान कारण प्रकृति को मानते हैं। सांख्य प्रकृति परिणामवाद को मानता है।

अरविन्द के दर्शन में जगन्मिथ्यात्व का सिद्धान्त

शंकराचार्य ब्रह्म को एकमात्र सत् मानकर जगत को मिथ्या मानते हैं जबकि अरविन्द 'सर्वखल्विद' ब्रह्म[6] यह सब कुछ ब्रह्म ही है और जगत भी ब्रह्म के समान सत्य है, इस मत को स्वीकार करते हैं। यह जगत उसी परमतत्व की अभिव्यक्ति है। श्री अरविन्द ने जगत की उत्पत्ति के सम्बन्ध में सांख्य के सत्य कार्यवाद को स्वीकार किया है। यद्यपि यह जगत परिवर्तनशील है किन्तु इस परिवर्तनशील जगत में गतिशीलता का आधार परमत्व है जो कि स्वयं चिरस्थायी है। परमत्व स्थिर और गतिशील दोनों है। श्री अरविन्द की दृष्टि में सच्चिदानन्द अपने को अनेकता एवम् परिवर्तन में अभिव्यक्त करते हुए अमर रूप में बना रहता है।

श्री अरविन्द के अनुसार यह सृष्टि अज्ञान में निमज्जन है।[7] परमतत्व की अपनी अभिव्यक्ति चेतना के विभिन्न स्तरों में करता है तभी सृष्टि होती है। सृष्टि का निर्माण अज्ञान से ज्ञान की ओर जाती है। अज्ञान एवं अपूर्णता का अतिक्रमण कर ज्ञान एवं पूर्णतः को प्राप्त करना है। उत्थान या अवरोहन का क्रम है। श्री अरविन्द परमसत् तथा जड़ जगत के एकत्व को स्वीकार करते हैं। श्री अरविन्द के चिन्तन में अतिमानस की अवधारणा अपने आप में विशिष्ट है। सच्चिदानन्द इस जगत की सृष्टि अतिमानस के माध्यम से करता है। अतिमानस ही सृष्टि का कर्ता है।

सच्चिदानन्द की एकता ही अतिमानस में रूपान्तरित होती है। अतिमानस ही सापेक्ष ईश्वर का रूप है जबकि सच्चिदानन्द निरपेक्ष और अनन्तम् है। अतिमानस सच्चिदानन्द का विशाल आत्म विस्तार है।[8] अद्वैत वेदान्त की भाँति श्री अरविन्द भी सत् चित् अनान्द निर्गुण सच्चिदानन्द के मूलस्वरूप मानते हैं। सच्चिदानन्द और अतिमानस में अभेदता का गुण है। श्री अरविन्द के अनुसार अतिमानस और सच्चिदानन्द में तत्वगत भेद नहीं है, भेद केवल क्रियागत ही है।

अतिमानस निरपेक्ष सत् और जगत के बीच मध्यवर्ती तत्व है।[9] विश्व का प्रारम्भ और अन्त सच्चिदानन्द में है। अतिमानस के सामर्थ्यशक्ति के द्वारा ही इस जगत की अभिव्यक्ति होती है। अतिमानस संसार के प्रत्येक रूप में और शक्ति में विद्यमान है। अतिमानस के द्वारा जगत की उत्पत्ति उस सच्चिदानंद के कारण रूप के कार्य रूप में परिणति है। श्री अरविन्द शंकराचार्य की भाँति जगत उत्पत्ति को नहीं मानते बल्कि वे भी शंकराचार्य की भाँति जगत को उस निरपेक्ष तत्व की अभिव्यक्ति मानते हैं। श्री अरविन्द के अनुसार परमसत् अपने चित् शक्ति के रूप में विकास का कारण रूप है।

श्री अरविन्द विकास की दो प्रक्रियाओं को मानते हैं, वे हैं अवरोहण और आरोहण।

अवरोहण (Descent or Involution)

परमसत् सर्वप्रथम अतिमानस के माध्यम से अपने को जड़ की अज्ञानता में अन्तलीन करता है। यह सृष्टि के प्रारम्भ होने का प्रथम चरण है। अवरोहण प्रक्रिया के द्वारा परमतत्व अपनी अभिव्यक्ति अज्ञानता के क्षेत्र में करता है। परमसत् जगत का उपादान और निमित्त कारण है परमतत्व जो अपने आपको अज्ञानता के क्षेत्र में अभिव्यक्त करती है तो दूसरी ओर ज्ञान के क्षेत्र में भी उसकी अभिव्यक्ति होती है। अज्ञान ज्ञान का विरोधी न होकर एक सीमित एवं खण्डित ज्ञान है।[10] मानव सात प्रकारों के अज्ञान से ग्रसित है जो क्रमशः मौलिक अज्ञान, विश्वात्मक अज्ञान, अहं भावात्मक अज्ञान, कालिक अज्ञान, मनोवैज्ञानिक अज्ञान, संघटनात्मक अज्ञान एवं व्यवहारिक अज्ञान।

व्यवहारिक अज्ञान के कारण मानव का सम्बन्ध मिथ्यात्व से हो जाता है। परम सत् का जगत में अभिव्यक्ति ही मिथ्यात्व जगत की अभिव्यक्ति है। प्रश्न उठता है कि क्या ज्ञान के क्षेत्र में सृष्टि का विकास सम्भव नहीं है। प्रति उत्तर में अरविन्द कहते हैं कि यदि ज्ञान क्षेत्र में सृष्टि का विकास होगा तो ऐसी सृष्टि केवल ज्ञानी तक सीमित होगी। अरविन्द के अनुसार अनिवार्यता भ्रम रूप नहीं इसकी अपनी सत्ता है जो सच्चिदानंद की तरह सत् है। अरविन्द समग्र विकासवाद के समर्थक है।

श्री अरविन्द तथा शंकराचार्य के जगत मिथ्यात्व सम्बन्धी सिद्धान्त का तुलात्मक अध्ययन

शोध पत्र के इस भाग में हम दोनों दार्शनिकों के जगत मिथ्यात्व सम्बन्धी मतों के किन बिन्दुओं पर समानता और असमानता है, उन बिन्दुओं को स्पष्ट करेंगे–

शंकराचार्य माया से जनित जगत को मिथ्या मानते हैं। कुछ काल के लिए जगत सत्य है जब तक जीवात्मा को अहम् ब्रह्मास्मि का बोध न हो जाए। ईश्वर सगुण रूप में इस जगत का निर्माण करता है। वही अरविन्द सच्चिदानन्द के सगुण स्वरूप को असत्य मानते हैं क्योंकि वे सच्चिदानन्द के सगुण स्वरूप को असत्य

मानते हैं क्योंकि वे सच्चिदानन्द को स्थिर और गत्यात्मक, अपरिवर्तनशील तथा परिवर्तनशील दोनों मानते हैं।

श्री अरविन्द जगत को सच्चिदानंद के समान सत्य माना है जबकि शंकराचार्य जगत को ब्रह्म के समान सत्य नहीं मानते हैं। जगत एक व्यवहारिक सत्ता है। यदि हम जगत को सच्चिदानन्द के समान सत् मान लें तो जीव को अपने अज्ञान को दूर करने का प्रयास व्यर्थ होगा क्योंकि जगत तो सच्चिदानन्द के समान सत्य है तो अज्ञानता का प्रश्न ही नहीं उठता।

श्री अरविन्द माया की सत्ता को यथार्थ मानते हैं। माया ही सृष्टि का निर्माण करती है। जबकि शंकराचार्य माया की सत्ता को न तो सत् मानते हैं और न असत् बल्कि इसे अनिवर्चनीय मानते हैं।

मोक्ष सम्बन्धी मत में दोनों दार्शनिकों में मतभेद हैं। शंकराचार्य के अनुसार मोक्ष अप्राप्त की प्राप्ति है। जीव अविद्या के कारण अपने वास्तविक स्वरूप का बोध नहीं होता है। किन्तु ब्रह्म ज्ञान के होने पर जीव को अहम् ब्रह्मास्मि का बोध होता है। मोक्ष निरपेक्ष (बन्धन सापेक्ष नहीं) है, ब्रह्म भाव है तथा नित्य है। मोक्ष पुनर्जन्म से मुक्ति है। श्री अरविन्द शंकराचार्य की एक मुक्ति सम्बन्धी अवधारणा का खण्डन करते हैं। सर्वमुक्ति विकास प्रक्रिया का अन्तिम लक्ष्य है। जब तक समग्र विश्व का विकास नहीं होगा तब तक अज्ञान से मुक्ति सम्भव नहीं है।

श्री अरविन्द जगत मिथ्यात्व के सिद्धान्त को अपने माया सिद्धान्त के द्वारा स्पष्ट करते हैं। श्री अरविन्द माया को शून्य में जाल बुनने वाली किसी अनिवर्चनीय शक्ति नहीं समझते बल्कि यह सच्चिदानंद की एक लीला है। श्री अरविन्द लीला के दो रूप निम्नत्तर माया और उच्चतर माया को मानते हैं। आरोहण क्रम में निम्नतर माया के कारण ही मनुष्य यह समझता है कि वह कुछ में भिन्न–भिन्न है किन्तु सब कुछ उसमें अपृथक रूप से नहीं है। उच्चतर माया के कारण मनुष्य यह समझता है कि प्रत्येक सब में है और सब कुछ प्रत्येक में सहअस्तित्व रखते हैं।[11]

श्री अरविन्द जगत के मिथ्यात्व को सिद्ध करने के लिए माया का सहारा लेते हैं यदि हम माया के द्वारा जगत का सिद्ध करने का प्रयास करते हैं तो माया को जगत की संज्ञा दी जा सकती है।

शंकराचार्य तथा श्री अरविन्द के जगत मिथ्यात्व सिद्धान्त में अन्तर यह है कि जहाँ शंकराचार्य जगत को ब्रह्म की एक क्रीडा मानते हैं और क्रीडा से ब्रह्म अप्रभावित रहता है। किन्तु अरविन्द जगत निर्माण को ब्रह्म की क्रीडा नहीं मानते बल्कि इस प्रक्रिया में एक 'नियम' देखते हैं– एक ढंग देखते हैं। उसी नियम तथा उसी ढंग को वे 'माया' कहकर सूचित करते हैं।

निष्कर्ष

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि श्री अरविन्द का पूर्णद्वैत दर्शन और शंकराचार्य का अद्वैत दर्शन का उद्देश्य मानव कल्याण है। शंकराचार्य तथा श्री अरविन्द के द्वारा जगत मिथ्यात्व सिद्धान्त में शंकर का जगत मिथ्यात्व सिद्धान्त अधिक तर्क संभव है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. *रचनानुकपत्तिश्चानुमानम् शा0 भा0 ब्र0सू0 2/2/7।*
2. *शा0 भा0 ब्र0सू0 2/2/2।*
3. *शा0 भा0 ब्र0सू0।*
4. *कठो0 शा0भा0।*
5. *ब्र0सू0 1/1/16।*
6. *छान्दोग्योपनिषद् 3/14/11।*
7. *भारतीय दर्शन की समस्यायें और समकालीन दर्शन, डॉ0 बी0एन0 सिंह, पृ0 201।*
8. *श्री अरविन्द दर्शन – दि लाइफ डिवाइन, पृ0 180।*
9. *श्री अरविन्द दर्शन – दि लाइफ डिवाइन, पृ0 139।*
10. *श्री अरविन्द दर्शन – दि लाइफ डिवाइन, पृ0 136।*
11. *श्री अरविन्द दर्शन – डॉ0 भट्टाचार्य, पृ0 80।*